लोकनृत्य : एक प्राचीन एवं पारम्परिक नृत्य विद्या

डॉ0 (श्रीमती) सुमन लता शर्मा
एसो0 प्रोफे0, संगीत विभाग
आर0जी0 (पी0जी0) कॉलिज, मेरठ
Email : jain444rajeev@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 (श्रीमती) सुमन लता शर्मा,

लोकनृत्य : एक प्राचीन एवं पारम्परिक नृत्य विद्या

Artistic Narration 2019, Vol. X, pp.70-72

http:// artistic.anubooks.com/

सारांश

भारत विवधि संस्कृतियों को अपने अन्दर समेटने वाला महान राश्ट्र है। भारत की कलाएँ विदेषों में भी अपनी विषेशताएँ स्पश्ट रुप से दर्षाती हुई जनमानस के अन्तर को प्रभावित करती हैं।

जीवन स्वयं एक कलाकृति है। प्रत्येक प्राणी में ह्रदयगत भावों को अंगसंचालन द्वारा प्रगट करने की क्षमता विद्यमान रहती है। सभी कलाओं की भाँति नष्त्य भी मानव की आन्तरिक वष्त्तियों की अभिव्यक्त करने की कला है।

प्रस्तावना

हृदयगत भावों को अभिनय द्वारा प्रगट करने को नाट्य कहते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन में जो क्रियाकलाप होते हैं जैसे – प्रसन्नता, शोक, दया, क्रोध आदि ये सब नाट्य ही कहलाते हैं। ताल और लय के साथ अंगसंचालन करने को 'नृत्त' कहते हैं। इसमें भावनाओं के प्रदर्शन का कोई महत्व नहीं होता।

जब हृदयगत भावों की अभिव्यंजना अभिनय, ताल और लय से की जाती है अर्थात् जब नाट्य और नृत्त दोनों का मेल होता है और तालबद्ध अंगसंचालन में अभिनय का भी समावेश होता है तो उसे नृत्य की संज्ञा दी जाती है। जब भी मानव आनन्दित होता है तब वह खुशी से झूम उठता है और विभिन्न प्रकार के अंगसंचालन करता है, जो कि स्वाभाविक है। यही क्रिया लोकनृत्य को जन्म देती है।

भारत में नृत्यकला अतिप्राचीन है। डॉ0 शान्ति अवस्थी ने लिखा है :– ''लोकनृत्य सभी कलाओं में प्राचीन है। मनोविज्ञान के आधार पर मनुष्य में भाव प्रदर्शन की आकांक्षा जन्मजात मानी गई है। सृष्टि के प्रारंभ में भावविहीन मानव ने भाव प्रगट करने के लिये शरीर के हावभाव का आश्रय लिया होगा। भाव–प्रदर्शन की सार्थक मुद्राओं को भी भाषा में नृत्य कहा है।'' प्राचीन पुराणों में गन्धर्व लोक की गन्धर्व कन्याओं का उल्लेख मिलता है, जो इन्द्र की सभा में नृत्यांगनाएँ थीं, उन्हें अप्सरा कहा जाता था। वे नृत्यकला में दक्ष थीं देवताओं और मुनियों को अपनी कला पर मुग्ध करना इनका मुख्य कार्य था। इन अप्सराओं में रम्भा, उर्वशी, मेनका आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये अप्सराएँ गन्धर्वलोक से लेकर भूलोक तक अपनी कला का प्रदर्शन करती थीं। विश्वामित्र तथा मेनका का संबंध इस तथ्य की पुष्टि करता है।

वैदिककाल में नृत्यकला बहुत लोकप्रिय थी, इसका प्रमाण हमें वेदों में मिलता है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा की खुदाई में एक नर्तकी की कांस्य मूर्ति इसका प्रमाण है तथा भरत का नाट्यशास्त्र तो एक प्रमाणिक ग्रंथ है ही। इसमें 33 अध्याय हैं, जिनमें से सात अध्याय पूर्णतया नृत्य संबंधी है।

वाल्मिकीकृत प्रसिद्ध ग्रंथ रामायण में रामजन्म के अवसर पर निम्न श्लोक मिलता है –

''उत्सवक्ष महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।

रथ्याक्ष जनसम्बाधा नटनर्तक संकुला।।

अर्थात् अयोध्या में बहुत बड़ा उत्सव हुआ। मनुष्यों की भारी भीड़ एकत्र हुई। गलियाँ और सड़कें लोगों से खचाखच भरी थी। बहुत से नट व नर्तक वहीं अपनी कलाएँ दिखा रहे थे।

महाभारतकाल में नृत्यकला अपनी उन्नति के उच्चशिखर पर थी। अर्जुन ने नृत्यकला की शिक्षा गन्धर्वलोक में उर्वशी से प्राप्त की थी और अज्ञातवास के समय उसने वृहन्नला के रूप में विराट नारी की राजकुमारी उत्तरा को नृत्यकला में निपुण किया।

'नटवरी नृत्य' इस नवीन शैली का जन्म भी श्रीकृष्ण द्वारा इसी युग में हुआ और नृत्यकला समाज का एक अंग बन गई। रासलीला, बसन्तलीला और होलीनृत्य बहुत लोकप्रिय हुए। धीरे–धीरे नृत्य मन्दिरों में देवी–देवताओं के समक्ष होने लगे। इन नर्तकियों को देवदासी के नाम से पुकारा जाने लगा। आगे चलकर देवदासियों में व्याभिचार फैल गया। देवदासियाँ राजा–महाराजाओं के सम्पर्क में आने लगीं। वे देवदासी से गणिका बन गईं। राजदरबारों में धीरे–धीरे इस काल का पतन होने लगा लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् फिर यह कला अपनी पुरातन लोकप्रियता की ओर अग्रसर हुई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सर्वप्रथम भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लोकनृत्यों का महत्व समझते हुए लोकनृत्यों को 1953 में गणतन्त्र दिवस (26 जनवरी) के अवसर पर अहम स्थान दिया। तब से प्रत्येक वर्ष गणतन्त्र दिवस के अवसर पर भारत के प्रत्येक प्रदेश के लोकनृत्यों को सम्मिलित किया जाने लगा, जिससे साधारण जनता में फिर से एक नया उत्साह और अपनी संस्कृति के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। ये प्रस्तुतियाँ देश की विभिन्न जातियों को तथा प्रदेशों की एकता के सूत्र में बाँधती हैं

लोकनर्तक को शास्त्रीय नर्तक की तरह ताल के पीछे नहीं चलना पड़ता बल्कि लय स्वयं लोकनर्तक के साथ चलती है अर्थात् लोकनृत्यों में ताल और लय का सृजन स्वयं होता है क्योंकि ये लय–प्रधान होते हैं।

लोकनृत्य सरल, सर्वगम्य और सर्वसुलभ होते हैं। ये किसी के द्वारा सीखे या सिखाये नहीं जाते बल्कि प्राचीन संस्कारों के कारण बच्चे देखकर स्वतः सीख लेते हैं। स्त्रियाँ बच्चों के जन्मदिन व शादी–विवाह के अवसरों पर जो नृत्य करती हैं उनकी शिक्षा कहीं से भी नहीं लेनी पड़ती। यह एकदूसरे को देखकर आँख मटकाना, हाथ मटकाना, कमर मटकाना व गर्दन मटकाना आदि सीख लेती हैं, जो लोकनृत्य के लिये काफी होता हैं

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लोकनृत्य एक प्राचीन एवं पारम्परिक नृत्य विधा है, जो साधारण मनुष्य के दैनिक व्यवहार, सुखदुःख तथा सूक्ष्म एवं स्थूल मनोभावों से जुड़े हुए हैं। लोकनृत्यों में लोकगीत का स्थान अभिन्न है और इसकी विशिष्टता स्थान–स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों तथा सामाजिक वातावरण से ही बनती हैं। ये लोकनृत्य मनुष्य के आसपास के परिवेश से उपजे हैं इसी कारण भारत के विभिन्न प्रान्तों के लोकगीतों एवं लोकनृत्यों में इतने भेद होते हुए भी समानता है जो समूचे भारत को बाँधकर रखती है।